International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
An International Quarterly bi-lingual Multidisciplinary Double Blind Open Access Peer Reviewed Refereed Journal
ISSN :2581-9925, Impact Factor (Cosmos: 7.555 & I2OR: 5.105), Volume 08, No. 02(I), April- June, 2026, pp. 187-198

'सूत्रधार' एवं 'पूरबी बयार' में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयामः एक अध्ययन

शिवानी चौधरी[1*] | डॉ. रामदेव सिंह भामू[2]

[1]शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्विद्यालय, सीकर, राजस्थान।
[2]शोध निर्देशक, आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय विज्ञान महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

[*]Corresponding Author: shivajat008@gmail.com

Citation: चौधरी, शिवानी एवं भामू, रामदेव (2026). 'सूत्रधार' एवं 'पूरबी बयार' में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयामः एक अध्ययन. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 08(02(I)), 187–198. https://doi.org/10.62823/IJEMMASSS/8.2(I).9112

सार

- ***केंद्रीय विषय–वस्तु***

यह शोध–पत्र २०वीं सदी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (संजीव कृत उपन्यास 'सूत्रधार') तथा २१वीं सदी के समकालीन परिप्रेक्ष्य ('पूरबी बयार' के आंचलिक विमर्श) के माध्यम से पूर्वी भारत (बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश) के ग्रामीण समाज में आए संरचनात्मक, सांस्कृतिक और राजनैतिक बदलावों का एक गहन समाजशास्त्रीय व साहित्यिक अनुशीलन है।

- ***मुख्य निष्कर्ष एवं वैचारिक रूपांतरण***

प्रतिरोध की प्रकृति में बदलाव (मूक बनाम प्रत्यक्ष): 'सूत्रधार' में शोषितों (विशेषकर नाँह जाति) का प्रतिरोध कलात्मक, परोक्ष और प्रतीकात्मक है, जो भिखारी ठाकुर के 'बेटी–बेचवा' जैसे नाटकों के माध्यम से सामंतवाद के विरुद्ध केवल वैचारिक बीज बोता है। इसके विपरीत, समकालीन 'पूरबी बयार' में विद्रोह का आवरण टूट चुका है। डॉ. आंबेडकर के विचारों और राजनैतिक चेतना के प्रभाव से आज का वंचित नायक (पारसनाथ) चुनावी राजनीति, अदालतों और सड़कों पर अपने अधिकारों के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष लड़ रहा है।

स्त्री–चेतना का प्रकटीकरण (अदृश्यता बनाम दृश्यता): ऐतिहासिक रूप से ग्रामीण अंचल की स्त्री मुख्यधारा से पूरी तरह 'अदृश्य' थी अपितु यहाँ तक कि रंगमंच पर भी स्त्रियों का प्रवेश निषेध होने के कारण पुरुष कलाकार (लहटू व दुखी) स्त्री वेश धारण करके 'लौंडा नाच' करते थे। स्त्री का अस्तित्व केवल पति (महेंदर) के विरह गीतों (गवणाई) तक सीमित था। आधुनिक 'पूरबी बयार' में यह स्थिति पूरी तरह बदल चुकी है। आज की स्त्रियाँ (लखपति) महिला स्वावलंबन समूहों के माध्यम से आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर ग्राम पंचायतों और नागरिक समाज के निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सक्रिय व स्वतंत्र भूमिका निभा रही हैं।

विस्थापन और प्रवासन का नया संकटः शोध यह रेखांकित करता है कि बीसवीं सदी का जो प्रवासन केवल कलकत्ता या असम की चाय झाड़ियों तक सीमित था, वह आज वैश्विक बाज़ारवाद के कारण दिल्ली, मुंबई और खाड़ी देशों तक फैल चुका है, जिसने गाँवों को "भूत–गांवों" (घोस्ट विलेजेज़) में तब्दील कर नए पारिवारिक संकट खड़े कर दिए हैं।

[*] *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

- ***अकादमिक मूल्य***

अंततः, यह शोध–पत्र प्रमाणित करता है कि पूर्वी भारत का ग्रामीण समाज अब केवल एक पिछड़ा भौगोलिक अंचल नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय की एक जीवंत, लोकतांत्रिक और प्रगतिशील प्रयोगशाला बन चुका है। यह अध्ययन साहित्य और समाजशास्त्र के अंतर्संबंधों को समझने के लिए एक अनिवार्य कुंजी है।

शब्दकोशः *सूत्रधार, पूरबी बयार, सामाजिक चेतना, ग्रामीण समाज, वैश्विक बाज़ारवाद।*

प्रस्तावना

समकालीन हिंदी कथा–साहित्य का इतिहास वास्तव में उपेक्षित समुदायों, आंचलिक अस्मिता और सामूहिक लोक–मानस की चेतना की क्रमिक विकास–प्रक्रिया का इतिहास है। संजीव का जीवनीपरक उपन्यास 'सूत्रधार' और समकालीन आंचलिक आलोचना में 'पूरबी बयार' के नाम से चर्चित वह साहित्यिक चेतनाकृजो पूर्वी भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश (बिहार, झारखंड और पूर्वी उत्तर प्रदेश) से निर्मित होती हैकृअपनी विकास–यात्रा में अत्यधिक महत्व और अद्वितीय अकादमिक मूल्य वाले दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। साहित्य कोई विच्छिन्न कल्पनालोक की अमूर्त उड़ान नहीं है अपितु यह अपने समय और अपने स्थान के भीतर घटित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उथल–पुथल का एक सजीव, धड़कता हुआ हृदय है।

'सूत्रधार' में संजीव अपनी औपन्यासिक सामग्री भिखारी ठाकुर के जीवन से लेते हैंकृजो भोजपुरी क्षेत्र के विख्यात लोक कवि, नाटककार और लोक कलाकार थेकृऔर इस प्रकार वे समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज का सबसे यथार्थपरक तथा मार्मिक चित्रांकन प्रस्तुत करते हैं। इसके विपरीत, 'पूरबी बयार' का आधुनिक आंचलिक साहित्य उसी लोक–संस्कृति की एक आधुनिक और समकालीन निरंतरता का दस्तावेज़ीकरण करता हैकृउसके बदलते रूपों, बाज़ारीकरण की चुनौतियों और वैश्वीकरण के युग में ग्रामीण परिवेश के तीव्र रूपांतरण की कथा के साथ। यह विशद अध्ययन इन दो प्रमुख साहित्यिक स्तंभों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना की समग्रता के आर–पार एक कठोर तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत करता है, जिसमें विस्थापन के अंतहीन चक्र, जातिगत जकड़न का नव–सामंती रूप, वर्ग–संघर्ष और बदलती नारी–पहचान के प्रतिमान शामिल हैं।

'बिदेसिया' संस्कृति और पलायन की त्रासदी

पूर्वी भारत का सबसे बड़ा, सबसे क्रूर और सबसे विडंबनापूर्ण इतिहास प्रवासन और अपनी भूमि से बेदखली का रहा हैकृविशेषकर भोजपुरी, मगही और मैथिली–भाषी क्षेत्रों में। यह कोई स्वैच्छिक प्रवासन नहीं है अपितु यह एक व्यवस्था–जनित आर्थिक बाध्यता है, जो इन दोनों साहित्यों के वैचारिक केंद्र को आधार देती है। शिल्प और कथा के स्तर पर संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार' भिखारी ठाकुर के कालजयी नाटक 'बिदेसिया' के कठोर और प्रामाणिक यथार्थ पर निर्मित है। उपन्यासकार यह निर्दिष्ट करता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों और स्थानीय सामंती गठजोड़ों ने ग्रामीण भारत के पारंपरिक कुटीर उद्योगों और कृषि–व्यवस्था को पूरी तरह तबाह कर दिया था। परिणामस्वरूप, उस क्षेत्र की पुरुष आबादी को अंततः दो वक्त की रोटी के लिए अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ती थी और उन्हें कलकत्ता की जूट मिलों में बंधुआ मजदूर बनने के लिए खदेड़ दिया जाता था, या पूर्व दिशा में असम के चाय बागानों की ओर विस्थापित होने पर विवश किया जाता था।

उपन्यास का मुख्य पात्र महेंदर इसी विवश पलायन का जीवंत और करुण प्रतीक है, जो रोज़गार की तलाश में अपनी नवविवाहित पत्नी सुंदरी को गाँव में अकेला छोड़कर परदेस चला जाता है। कलकत्ता की महानगरीय क्रूरता और एकाकीपन के बीच महेंदर वहाँ 'रखैल' (प्यारी) के जाल में फँस जाता है, जो महानगरीय संस्कृति द्वारा ग्रामीण श्रम के शोषण और नैतिक विखंडन को दर्शाती है। भिखारी ठाकुर ने इस नाटक को जब

अपने दल के माध्यम से मंचित किया, तो उनके मुख्य सहयोगी कलाकार मँगल अहीर ने इसमें अपने अभिनय से अद्भुत प्राण फूँके थे। मँगल अहीर का अभिनय केवल रंगमंच का हिस्सा नहीं था, बल्कि वह प्रवासन की उस पीड़ा को सीधे जनता के दिलों तक पहुँचाता था।

इस विस्थापन का सबसे दुखद और भयानक पहलू वह सामाजिक व मानसिक संताप रहा है जिसका सामना उन स्त्रियों को गांवों में एकाकी छोड़े जाने पर करना पड़ा। साहित्यिक संदर्भ में इन विस्थापित पुरुषों की पत्नियों को लोक–भाषा में 'गवणाई' या 'बिरहिनी' कहा जाता है। संजीव ने इन स्त्रियों को मानसिक यातना में, उनकी बुझ न सकने वाली अकेलेपन की पीड़ा में, और सामंती पुरुषों के बीच उनकी सामाजिक असुरक्षा को अत्यंत बारीक मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय अंतर्दृष्टि के साथ साकार किया है। पीछे छूटी सुंदरी के विलाप और उस समूचे समाज की आर्थिक रीढ़ टूटने की करुण पुकार को भिखारी ठाकुर के इस कालजयी उद्धरण से समझा जा सकता हैः

"रुपया कमाए गइला कलकतवा ए बलमुआ... रहिया निहारत तोर गोड़वा पिराइल, अइला न कवनो समचार ए बलमुआ।"

जब सुंदरी का भाई (महेंदर का साला) उसे खोजने कलकत्ता जाता है, तो वह दृश्य ग्रामीण संवेदना और शहरी यांत्रिक क्रूरता के ऐतिहासिक टकराव को पूरी नग्नता के साथ उभारता है।

इसके विपरीत, समकालीन 'पूरबी बयार' इसी प्रवासन का एक आधुनिक और कहीं अधिक व्यापक व क्रूर संस्करण प्रस्तुत करता है, जो इक्कीसवीं शताब्दी के यथार्थ तक जाता है। अब पलायन का गंतव्य केवल असम या कलकत्ता नहीं है, बल्कि आधुनिक औद्योगिक नगरकृदिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, गुजरात या खाड़ी के देश हैं। विस्थापन की भौगोलिक अभिव्यक्ति भले ही बदल चुकी है, लेकिन श्रमिकों का आर्थिक और शारीरिक रूप से संयुक्त शोषण करने की मूल व्यावसायिक पूंजीवादी प्रकृति लगातार बनी हुई है। समकालीन 'पूरबी बयार' यह दिखाता है कि इस अनवरत पलायन ने कैसे पूरे–के–पूरे गांवों को युवाओं से खाली कर दिया है, जिससे अंचल में 'भूत–गांवों' (घोस्ट विलेजेज़) का संकट खड़ा हो गया है। गाँवों में केवल समय काटने को विवश वृद्ध माता–पिता और अबोध बच्चे ही शेष रह गए हैं। 'मनी–ऑर्डर अर्थव्यवस्था' पर निर्भर इस समाज की अंतःसंरचना में सांस्कृतिक और पारिवारिक विघटन गहराई से घटित हो चुका है। खेती और कृषि संकट की तीव्रता तथा वैश्विक बाज़ार–शक्तियों के चकाचौंध ने इस बेदखली की प्रक्रिया को और अधिक विकृत और बर्बर बना दिया है। यही कारण है कि नए आंचलिक लेखक अपनी रचनाओं में पूरी वैचारिक शक्ति के साथ इस मुद्दे को उठाकर उससे जूझ रहे हैं।

जातिगत यथार्थ, सामंती दंश और वर्ग–संघर्ष

जाति–प्रथा ग्रामीण भारतीय समाज की रीढ़ रही है और उसकी सबसे बड़ी विडंबना भी। संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार' इस सामाजिक जकड़न तथा उच्च और निम्न के कपटी जातीय विभाजन पर सीधे, यथार्थपरक और अडिग प्रहार करता है। पुस्तक के मुख्य पात्र भिखारी ठाकुर स्वयं एक अत्यंत पिछड़ी जाति (नाई जाति) से संबंधित थे, जिसे सामंती समाज में सामाजिक पिरामिड के निचले पायदान पर रखा गया था। इतिहास से जुड़े विवरणों का उपयोग करते हुए संजीव ने ठोस रूप से सिद्ध किया है कि भले ही वे एक अत्यंत लोकप्रिय और कलात्मक रूप से समृद्ध कलाकार बन चुके थे, लेकिन सामंती समाज उन्हें मानवीय गरिमा देने के बजाय केवल उनकी जाति के संकीर्ण चश्मे से ही देखता था। उच्च और सामंती वर्गों ने न केवल आर्थिक रूप से निम्न जातियों का श्रम लूटा, बल्कि उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति (लोक–कला) को भी 'अछूत' और 'हीन' कहकर तिरस्कृत किया।

संजीव को एक उपन्यासकार के रूप में जो बात विशिष्ट बनाती है, वह है भिखारी ठाकुर के एक अकेले व्यक्तिगत संघर्ष को सामूहिक चेतना के मंच तक पहुँचाने की उनकी औपन्यासिक क्षमता। वे एक नई वर्ग–पहचान गढ़ते हैं जो उन सभी बिखरी हुई, दबी–कुचली, उपेक्षिता और भूमिहीन जातियों को एक साथ

जोड़ती है। उपन्यास में इस वर्ग को वे 'नाँह जाति' (अर्थात सर्वहारा लोक–कलाकार और भूमिहीन मजदूर) नाम से वर्गीकृत करते हैं। इस कलात्मक और वैचारिक संगठन में रामचंद्र, शत्रुघ्न, मोतिसर, गनौर और कुलदीप जैसे साथी लोक–कलाकार, जो स्वयं शोषित और अछूत समझे जाने वाले वर्गों से आते हैं, भिखारी ठाकुर की वैचारिक रीढ़ बनते हैं। मोतिसर और गनौर का संगीत और नृत्य केवल कला प्रदर्शन नहीं था, बल्कि वह स्थापित सामंतवाद और उच्च वर्ग के दमन के खिलाफ प्रतिरोध का एक अत्यंत प्रभावी और व्यावहारिक रूप दर्ज करता था। उपन्यास का यह उद्धरण सामंती अहंकार की छाती पर वैचारिक प्रहार हैः

"जात से नाई, करम से कसाई नाहीं हईं सरकार! हम त लोक के दरद गावे वाला सूत्रधार हईं।"

यह चेतना स्पष्ट करती है कि लोक–कलाकारों का वास्तविक संघर्ष केवल आर्थिक नहीं था, बल्कि स्थापित वर्चस्ववादी समाज द्वारा छीनी गई सामाजिक गरिमा और सम्मान को वापस पाना था।

समकालीन 'पूरबी बयार' की ओर पलटकर देखें, तो हमें इस संघर्ष का एक नया, अधिक मुखर और प्रत्यक्ष दौर दिखाई देता है। समकालीन आंचलिक साहित्य–धारा अब केवल शोषित वर्ग की लाचारी, आँसू या भाग्यवादी उदासीनता से भरी हुई नहीं है। इसके विपरीत, शिक्षा के प्रसार, राजनैतिक जागरूकता और आधुनिक वंचित/हाशिए के विमर्श के फैलने के साथ, दबे हुए समाज ने अपने आत्म–सम्मान और संवैधानिक अधिकारों के लिए सीधी आवाज़ उठाई है। समकालीन कहानियों में पारसनाथ जैसा वंचित वर्ग का नायक अब सामंती जमींदारों के अत्याचार के सामने हाथ नहीं जोड़ता अपितु वह पंचायत चुनावों में नव–सामंती ताकतों को सीधी राजनैतिक चुनौती देता है। इस आधुनिक बयार में सदियों पुराने सामंती किलों के ढहने की आहट, भूमि–स्वामित्व के आंदोलनों की गूँज और शोषित वर्ग के राजनैतिक सशक्तिकरण का एक जीवंत रूप देखा जा सकता है। यह ऐसी चेतना है जो अब याचना नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए वैचारिक युद्ध की घोषणा करती है।

स्त्री–चेतना का संक्रमणः पारंपरिक विरह से सशक्तिकरण तक

वैचारिक पैमाने पर, दोनों कृतियों ने महिलाओं के प्रति समाज के संकीर्ण पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण और लैंगिक असमानता के क्रूर स्वरूप का समाजशास्त्रीय अन्वेषण किया है। पुराने सामंती और औपनिवेशिक ढाँचे में स्त्रियों के दोहरे शोषण को 'सूत्रधार' अत्यंत मार्मिकता से उजागर करता है। एक ओर, वे अत्यधिक निर्धनता, संसाधनों की कमी और पतियों के दीर्घकालिक प्रवासन के कारण जुदाई और मानसिक संताप झेलती हैं अपितु दूसरी ओर, वे गाँव के रसूखदार जमींदारों की कामुक और अपराधी–सी निगाहों की पहली शिकार बनती हैं।

संजीव यहाँ एक गहरी ऐतिहासिक विडंबना की ओर संकेत करते हैं कि भिखारी ठाकुर द्वारा रचित नाटकों के सभी स्त्री पात्रों (जैसे 'बिदेसिया' की सुंदरी, 'बेटी–बेचवा' की बाल–वधू, या 'गंगा स्नान' की मछरिया) की भूमिकाएँ भी लोक–परंपरा में पुरुषों द्वारा निभाई जाती थीं। भिखारी ठाकुर के दल में लहटू और दुखी जैसे प्रसिद्ध पुरुष कलाकार थे, जो स्त्री वेश धारण करके 'लौंडा नाच' के रूप में इन पात्रों को मंच पर जीते थे। लहटू का स्त्री पात्र का अभिनय इतना जीवंत होता था कि दर्शक भाव–विभोर हो जाते थे। संजीव इस विडंबना के मूल में छिपे सत्य को सामने लाते हैं कि यह कोई कलात्मक चयन नहीं था, बल्कि यह एक भयानक, सर्वव्यापी पितृसत्तात्मक दमन था जो वास्तविक कुलवधुओं और बेटियों को सार्वजनिक मंच या सामाजिक संवाद तक आने की अनुमति नहीं देता था। संजीव इस स्त्री की 'अदृश्यता' और मूक दमन की त्रासदी को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ सामने लाते हैं।

'बेटी–बेचवा' नाटक का प्रसंग तत्कालीन समाज के आर्थिक और नैतिक पतन का चरम है, जहाँ चंद रुपयों के लालच में एक अबोध बालिका का विवाह अत्यंत वृद्ध मुंशीजी से कर दिया जाता है। लोभी पिता और वृद्ध मुंशीजी का चरित्र स्त्री को बिकाऊ संपत्ति समझने की क्रूर सामंती मानसिकता का प्रतीक है। नाटक की ये पंक्तियाँ आज भी पितृसत्ता के गाल पर तमाचा हैंः

"कवन कसूरवा कैलीं ऐ बाबूजी, जे मुइया अनकर हथवा में देहलू बेची... रुपया बटोरि कइलू हियरा कठोर, बेटी के कइलू तू माटी।"

इसी तरह, 'गंगा स्नान' की पात्र मछरिया का चरित्र बेमेल विवाह के मनोवैज्ञानिक दंश और स्त्री के अस्तित्वगत संकट को उभारता है।

इसके विपरीत, आधुनिक 'पूरबी बयार' की आंचलिक साहित्यिक प्रवृत्ति ने इस परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। आज की समकालीन कहानियों की नारी अतीत की तरह केवल रोने–बिलखने वाली असहाय प्राणी नहीं है अपितु वह घूँघट में चेहरा छिपाकर भाग्य को नहीं कोसती और न ही सामंती अत्याचारों के आगे आत्मसमर्पण करती है। समकालीन लेखन में, पुरुषों के महानगरों की ओर पलायन के बाद, अंचल की महिलाएँ केवल रसोई और घरेलू चारदीवारी तक सीमित नहीं हैंकृवे शिक्षित हैं और अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह सचेत हैं।

समकालीन कथाओं की नायिका लखपति जैसी स्त्रियाँ अब ग्राम पंचायतों में अपनी सक्रिय राजनैतिक भागीदारी और महिला स्वावलंबन समूहों के माध्यम से आर्थिक आत्मनिर्भरता की नई गाथा लिख रही हैं। वे रसोई–चूल्हे की पारंपरिक 'लक्ष्मण रेखा' को पार कर नागरिक समाज के भीतर अपनी स्वतंत्र अस्मिता और निर्णय लेने के अधिकारों का दावा करती हैं। यहाँ महिलाओं की चेतना अपने शरीर और मन की मुक्ति की ओर बढ़ती है, रूढ़ियों को पूरी तरह अस्वीकार करती है और पुरुष–वर्चस्व के समानांतर एक समतामूलक 'स्वतंत्र नागरिक पहचान' स्थापित करती है।

लोक–कला, जन–संस्कृति और सांस्कृतिक प्रतिरोध

सामाजिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कला कभी भी केवल मनोरंजन या कुलीन वर्ग को आराम देने वाली विलासिता न बने, बल्कि वह सामाजिक न्याय और जन–चेतना की सबसे पैनी तलवार बने। इसका अत्यंत स्पष्ट उदाहरण संजीव के 'सूत्रधार' में वर्णित भिखारी ठाकुर के रंगमंच से मिलता है। भिखारी ठाकुर का उद्देश्य यह कभी नहीं था कि दर्शकों की भीड़ केवल मनोरंजन के लिए उनके नाटकोंकृ'बिदेसिया', 'गबरघिचोर' या 'बेटी–बेचवा'कृको देख ले। बल्कि उनका रंगमंच निरक्षर, शोषित और दीन–हीन ग्रामीण जनमानस का एक अनौपचारिक और जीवंत विद्यालय था।

उपन्यास में जब 'गबरघिचोर' नाटक का मंचन होता है, तो वह अवैध संतानों के सामाजिक अधिकारों और स्त्री के मातृत्व के अधिकार का ऐसा तीखा प्रश्न उठाता है जो तत्कालीन रूढ़िवादी समाज और पंचायत के सरपँच की दोहरी नैतिकता को पूरी तरह निरुत्तर कर देता है। नाटक का मुख्य पात्र गबरघिचोर और उसका पुत्र गबुआ समाज के पाखंड को मंच से चुनौती देते हैं। वहीं, नाटक के सूत्रधार के रूप में नट और नटी के संवाद केवल कथा को आगे नहीं बढ़ाते, बल्कि दर्शकों के भीतर बैठे सामंती ढोंग पर तीखे व्यंग्य बाण चलाते हैं। अपने गीतों और संवादों के माध्यम से वे बाल–विवाह, बेमेल विवाह, नशाखोरी और बेटियों को बेचने की क्रूर परंपरा जैसी सामाजिक कुरीतियों पर सीधा प्रहार करते थेकृऐसी बुराइयाँ, जिन पर बड़े–बड़े कुलीन सुधारवादी आंदोलनों का भी कोई प्रभावी असर नहीं हो पाया था। इससे उत्पीड़ितों के भीतर एक वैचारिक चेतना जाग्रत हुई कि वे अपनी दयनीय स्थिति को पहचानें और व्यवस्था के खिलाफ खड़े हों।

समकालीन 'पूरबी बयार' में लोक–कला और जन–संस्कृति की स्थिति इस विशिष्ट लोक–चेतना को बचाए रखने की लड़ाई और उसके अश्लील व्यावसायीकरण के खिलाफ एक कड़े सांस्कृतिक प्रतिरोध को उजागर करती है। आज के जनसंचार माध्यमों और सामाजिक पटल के दौर में, जहाँ व्यावसायिक लाभ के लिए लोक–कलाओं, मिथकों और लोक–गीतों का बाज़ारीकरण करके उन्हें अश्लील, सतही और केवल एक उपभोक्ता वस्तु बनाने की साज़िश हो रही है, समकालीन आंचलिक लेखक अपने रचनाकर्म के माध्यम से लोक की प्रामाणिक पवित्रताकृअर्थात उसकी सामूहिक श्रम–संस्कृति और संघर्ष–धर्मिताकृको बचाने का ऐतिहासिक कार्य

कर रहे हैं। यह समकालीन बयार लोक–संस्कृति को बाज़ारीकरण और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के खिलाफ एक अभेद्य ढाल के रूप में स्थापित करती है।

तुलनात्मक आधार : 'सूत्रधार' एवं 'पूरबी बयार'

किसी भी आंचलिक या लोक साहित्य का समाजशास्त्रीय आकलन उसके कालगत गतिकी (समय की आंतरिक गतिशीलता) और सामाजिक संरचना की द्वंद्वात्मकता को समझे बिना स्वाभाविक रूप से अधूरा रहेगा। हिंदी कथा–साहित्य में इन दो साहित्यों के माध्यम से दो अलग–अलग ऐतिहासिक कालखंडों को प्रस्तुत किया गया हैकृसंजीव का उपन्यास 'सूत्रधार' जहाँ बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का कथा–वृत्त है, जब मध्यकालीन सामंतवाद ढह रहा था अपितु वहीं 'पूरबी बयार' इक्कीसवीं शताब्दी के संक्रमणकालीन ग्रामीण समाज की कहानी है, जो वैश्वीकरण, औद्योगिक बाज़ारवाद और सूचना क्रांति के दौर से गुज़र रहा है। यह केवल दो कृतियों या प्रवृत्तियों की तुलना नहीं है, बल्कि पूर्वी भारत के लोक–मानस की चेतना के क्रमिक और ऐतिहासिक विकास का एक प्रामाणिक समाजशास्त्रीय लेखा–जोखा है।

मूल स्वर का तुलनात्मक द्वंद्वः ऐतिहासिक संघर्ष बनाम समकालीन संक्रांति काल

- **'सूत्रधार' का मूल स्वरः कलात्मक और वर्ग–अस्तित्व की लड़ाई**

ऐतिहासिक और जीवनीपरक रूप से, 'सूत्रधार' एक लोक कलाकार के सामाजिक जीवन और उसकी कला के भीतर–बाहर के तनावों का प्रामाणिक दिग्दर्शन है। संजीव भिखारी ठाकुर को मात्र एक नर्तक या मनोरंजनकर्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं करते अपितु उन्होंने उन्हें एक क्रांतिकारी 'सूत्रधार' के रूप में गढ़ा है, जो सामंती समाज की बर्बरताओं के सामने अपनी सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखता है। यहाँ मूल संकट यह है कि लोक–कला के वे रूपकृजो पूरे समाज को सुधारते हैं और सामाजिक बुराइयों को निशाना बनाते हैंकृउन्हें प्रभुत्ववादी उच्च वर्ग द्वारा 'अश्लील' या 'निम्न कोटि का' कहकर बहिष्कृत कर दिया जाता है। संस्कृति और वर्ग–चेतना के प्रति यही गहन समाजशास्त्रीय बोध संजीव के उपन्यास को आंचलिक विमर्श के वैचारिक केंद्र में स्थापित करता है।

- **'पूरबी बयार' का मूल स्वरः संक्रांति और आधुनिकता का संकट**

जहाँ समकालीन 'पूरबी बयार' का मुख्य स्वर अतीत के विलाप से सांस नहीं लेता, बल्कि वह प्रचंड वर्तमान के यथार्थ से संचालित होता है। यह संक्रमणकालीन और संक्रांति काल का साहित्य है। आज का ग्रामीण समाज न तो पूरी तरह पारंपरिक सामंती जकड़न में है और न ही पूरी तरह आधुनिक हो चुका है। इसी द्वंद्व ने इस बयार को आकार दिया हैकृजहाँ मोबाइल फ़ोन, इंटरनेट और उपभोक्तावाद ने पारंपरिक ग्रामीण संबंधों में दरारें पैदा की हैं। यहाँ भावनात्मक संघर्ष केवल कला को बचाने का नहीं है, बल्कि बाज़ारीकरण के इस क्रूर युग में मानवीय संवेदना, मानवीय श्रम और क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण रखने का है।

- **पलायन के बदलते प्रतिमानः पारंपरिक 'बिदेसिया' संकट बनाम समकालीन कृषि–संकट**

आलोचनात्मक तुलनात्मक सारणीः

तुलनात्मक आयाम	'सूत्रधार' (बीसवीं सदी का यथार्थ)	'पूरबी बयार' (इक्कीसवीं सदी की संक्रांति)
मुख्य गंतव्य	कलकत्ता (जूट मिलें), असम (चाय बागान), बर्मा।	दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, गुजरात और खाड़ी के देश।
आर्थिक कारण	सामंती जमींदारी, अकाल, औपनिवेशिक कर व्यवस्था और बंधुआ मजदूरी।	कृषि का निरंतर अलाभकारी होना, कुटीर उद्योगों का अंत और वैश्विक बाज़ार-शक्तियों का दबाव।

पारिवारिक व सामाजिक प्रभाव	स्त्रियों का दीर्घकालिक विरह, 'गवणाई' व विरह-गीतों की उत्पत्ति और सामंती दंश।	'भूत-गांवों' का संकट, बुजुर्गों का एकाकीपन, संयुक्त परिवारों का पूर्ण विघटन और सांस्कृतिक अलगाव।
जाति एवं वर्ग यथार्थ	जातीय जकड़न व मूक दंश: भिखारी ठाकुर, रामचंद्र, मोतिसर, गनौर जैसे नाँह जाति के कलाकारों को कलात्मक श्रेष्ठता के बाद भी छुआछूत का सामना करना पड़ता था।	राजनैतिक चेतना व अधिकारवाद: पारसनाथ जैसे पात्रों के माध्यम से शोषित वर्ग अब मूक रहने के बजाय सीधे राजनैतिक और चुनावी संघर्ष कर रहा है।
स्त्री की सामाजिक स्थिति	अदृश्यता एवं मूक दमन: स्त्रियों का मंच पर पूरी तरह निषेध अपितु लहटू और दुखी जैसे पुरुषों द्वारा स्त्री पात्र निभाना (लौंडा नाच)।	दृश्यता एवं आत्मनिर्भरता: महिला स्वावलंबन समूहों द्वारा आर्थिक स्वतंत्रता और पंचायतों में लखपति जैसी महिलाओं की मुखर राजनैतिक भागीदारी।
प्रतिरोध की प्रकृति	कलात्मक व परोक्ष प्रतिरोध: नाटकों ('गबरघिचोर' में गबुआ व नट-नटी का संवाद) और मँगल अहीर के अभिनय के माध्यम से सामंती कुरीतियों पर वैचारिक प्रहार।	प्रत्यक्ष वैचारिक व कानूनी संघर्ष: शिक्षा, वामपंथी चेतना और राजनैतिक दलों के प्रभाव से अपने अधिकारों के लिए सड़कों व अदालतों में सीधा संघर्ष।

- **'सूत्रधार' में पलायन की विरह–चेतना**

'सूत्रधार' के साथ जो पलायन बयान किया गया है, वह औपनिवेशिक भारत के उस दौर से है जब आर्थिक बाध्यता लोक–चेतना का अंग बन गई थी। संचार के साधन न होने के उन दिनों में, जब पुरुष कलकत्ता या असम की तरफ निकल जाते थे, तो महीनों और कभी–कभी वर्षों तक उनका कोई समाचार नहीं आता था। समाज की यह विवशता 'विरह (विछोह) संस्कृति' को जन्म देती है। संजीव ने दिखाया कि शारीरिक विस्थापन महज़ दूरी की बात नहीं थाकृयह उस पितृसत्तात्मक क्रूरता का रूप बन गया था, जिससे ग्रामीण महिलाओं को अनंत प्रतीक्षा की सज़ा दी जाती थी।

इसके विपरीत, यह पलायन आज के समय की 'पूरबी बयार' में कहीं अधिक व्यापक और हिंसक हो चुका है। पहले विस्थापन का कारण जमींदार का कर्ज़ था अपितु अब राज्य की नीतियाँ और यह तथ्य है कि कृषि करना अब आर्थिक रूप से घाटे का सौदा बन चुका है। आजकल न केवल भूमिहीन मजदूर गाँव छोड़ रहे हैं, बल्कि सीमांत किसान भी तेजी से शहरों की ओर विस्थापित हो रहे हैं। समकालीन लेखक उन 'भूत–गांवों' (घोस्ट विलेजेज़) की त्रासदी दर्ज कर रहे हैं, जहाँ केवल बुज़ुर्ग और बच्चे ही रह जाते हैं। अब 'बिदेसिया' का दुख केवल लोक–गीतों में नहीं रोता अपितु वह उस भारी जनसमूह की चीख बन गया है, जो महानगरीय मलिन बस्तियों में दम घुटकर जीने को विवश हैकृऐसे लोग जिनके पास अपनी ही श्रम–शक्ति पर कोई वैधानिक अधिकार तक नहीं है।

- **'पूरबी बयार' में विस्थापन और 'घोस्ट विलेज' का संकट**

'प्रतिरोध' सामाजिक चेतना की सबसे प्रमुख संवाहक शक्ति है। 'सूत्रधार' में प्रतिरोध प्रत्यक्ष राजनैतिक टकराव के जरिए नहीं, बल्कि कलात्मक और परोक्ष रूप में होता है। जमींदारों के ठीक सामने, जब भिखारी ठाकुर नाटक 'बेटी–बेचवा' का मंचन करते हैंकृजो धन की शक्ति के बल पर वृद्ध मुंशीजी द्वारा अबोध बालिकाओं को खरीदने की सामंती कामलिप्सा पर तीखा प्रहार हैकृतब यह दर्शकों में चेतना जगाने का एक मूक लेकिन दृढ़ संकल्प है। सामंती प्रभु नाटक देख रहे हैंकृवे असहज हैं, लेकिन लोकप्रिय मंच की ताकत और व्यापक

जन–संदेश के सामने खुले तौर पर कुछ भी कहने का साहस नहीं रखते। संजीव इस प्रतिरोध को शोषित सामाजिक वर्गों के एक जन–हथियार के रूप में प्रदर्शित करते हैं। यह प्रतिरोध तुरंत व्यवस्था नहीं बदलता, लेकिन उत्पीड़ितों के भीतर वैचारिक क्रांति का बीज बो देता है।

आधुनिक 'पूरबी बयार' के मामले में, विद्रोह का यह कलात्मक और गुप्त आवरण पूरी तरह टूट चुका है। जिस वंचित समाज की आवाज़ सदियों तक दबाई गई थी, उसने अब संवैधानिक मार्ग से अपनी आवाज़ बुलंद की है। डॉ. भीमराव आंबेडकर के समतामूलक विचारों, वामपंथी चेतना और क्षेत्रीय राजनैतिक दलों के उदय ने पूर्वी क्षेत्र के शोषित वर्गों को सत्ताधारी वर्ग से सीधे और साहसपूर्वक टकराने की राजनैतिक शक्ति दी है। समकालीन आंचलिक साहित्य में निम्न वर्ग का नायक अब जमींदार के सामने हाथ नहीं जोड़ता अपितु वह पंचायत चुनावों में जमींदार को पराजित करता है, और भूमि के मालिकाना हक के लिए अदालतों और सड़कों पर सीधा संघर्ष करता है। इस तरह, प्रतिरोध अब केवल नाटकों के रूपकों तक सीमित नहीं है अपितु यह वही प्रत्यक्ष विचारधारात्मक और राजनैतिक चेतना है जो व्यवस्था की आँखों में सीधे उतरकर अपनी संप्रभुता का दावा करती है।

प्रतिरोध की प्रकृति का रूपांतरणः मूक कलात्मक प्रतिरोध बनाम प्रत्यक्ष वैचारिक व राजनैतिक संघर्ष

- **'सूत्रधार' में लोक–साहित्यिक और मूक प्रतिरोध**

'प्रतिरोध' सामाजिक चेतना की सबसे प्रमुख संवाहक शक्ति है। संजीव के उपन्यास 'सूत्रधार' में शोषितों का प्रतिरोध किसी तात्कालिक, प्रत्यक्ष या हिंसक राजनैतिक टकराव के जरिए व्यक्त नहीं होता, बल्कि वह कलात्मक और अप्रत्यक्ष रूप में सामने आता है। सामंती जमींदारों और रसूखदारों के ठीक सामने, जब भिखारी ठाकुर अपने लोक–नाट्य दल के साथ 'बेटी–बेचवा' जैसे क्रांतिकारी नाटक का मंचन करते हैंकृजो चंद रुपयों के लालच में धन की क्रूर शक्ति के बल पर वृद्ध मुंशीजी द्वारा अबोध बालिकाओं को खरीदने की सामंती कामलिप्सा और सामाजिक कुप्रथा पर तीखा प्रहार हैकृतब वह प्रदर्शन मंच पर एक सन्नाटा–भरी दृढ़ संकल्पना को जन्म देता है। यह मूक प्रतिरोध एक निरक्षर और शोषित जनसमूह के भीतर चेतना की पहली चिंगारी सुलगाने का कार्य करता है।

गाँव के सामंती प्रभु स्वयं अग्रिम पंक्तियों में बैठकर यह नाटक देख रहे हैं अपितु वे भीतर ही भीतर अत्यधिक असहज और कुंठित हैं, लेकिन जन–स्वीकार्यता वाले उस लोकप्रिय मंच की ताकत और उसके सीधे संदेश के सामने खुले तौर पर विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाते। लेखक संजीव इस प्रतिरोध–संस्कृति को 'नाँह जाति' (जिसमें भिखारी ठाकुर के अनन्य सहयोगी रामचंद्र, शत्रुघ्न, मोतिसर, गनौर और संगीतकार कुलदीप शामिल हैं) के एक अचूक जन–हथियार के रूप में प्रदर्शित करते हैं। यह कलात्मक प्रतिरोध भले ही उत्पीड़ितों की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था को तुरंत नहीं बदल पाता, लेकिन उनके मूक मानस के भीतर स्थापित व्यवस्था के खिलाफ एक गहरी प्रगतिशील विचारधारा का बीज अवश्य बो देता है। नाटक 'बेटी–बेचवा' के समय पिता की लालची प्रवृत्ति और सामंती क्रूरता पर प्रहार करता हुआ यह उद्धरण सर्वहारा वर्ग के इसी आक्रोश को स्वर देता हैः

"रुपया बटोरि कइलू हियरा कठोर, बेटी के कइलू तू माटी... कवन कसूरवा कैलीं ऐ बाबूजी, जे मुइया अनकर हथवा में देहलू बेची।"

- **'पूरबी बयार' में अधिकारों की हुंकार और सीधा संघर्ष**

इसके विपरीत, आधुनिक 'पूरबी बयार' के समकालीन आंचलिक साहित्य में विद्रोह का यह कलात्मक, प्रतीकात्मक और गुप्त आवरण पूरी तरह छिन्न–भिन्न हो चुका है। सदियों से जिस वंचित समाज की आवाज़ को सामंती दीवारों के पीछे दबाकर अनसुना किया गया था, उसने अब संवैधानिक और राजनैतिक धरातल पर अपनी आवाज़ बुलंद की है। बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर के समतामूलक विचारों, वामपंथी चेतना के

जन–जागरण और क्षेत्रीय राजनैतिक दलों के उदय ने पूर्वी क्षेत्र के इन शोषित व भूमिहीन वर्गों को सत्ताधारी वर्ग से सीधे और साहसपूर्वक टकराने की व्यावहारिक शक्ति प्रदान की है।

समकालीन आंचलिक कथा–साहित्य (जैसे मैत्रेयी पुष्पा, जगदीश्वर चतुर्वेदी के वैचारिक विमर्श या समकालीन युवा कहानीकारों की रचनाओं) में निम्न वर्ग का नायक अब सामंती जमींदारों के अत्याचार के सामने न तो हाथ जोड़ता है और न ही न्याय की भीख माँगता है। समकालीन कहानियों का केंद्रीय पात्र पारसनाथ जैसा सजग नायक अब पंचायत चुनावों में स्थापित नव–सामंती ताकतों को सीधी चुनावी चुनौती देता है अपितु वह अपने नागरिक अधिकारों और भूमि–स्वामित्व के वैधानिक हकों की प्राप्ति के लिए अदालतों से लेकर सड़कों तक प्रत्यक्ष वैचारिक संघर्ष और झड़प करता है। इस तरह, समकालीन बयार में प्रतिरोध को केवल नाटकों की रूपक–भाषा या मंच की चमक–दमक से सुसज्जित नहीं किया जाता अपितु यह वर्ग–चेतना से उपजी वह प्रत्यक्ष राजनैतिक शक्ति है जो शोषक व्यवस्था की आँखों में आँखें डालकर अपनी संप्रभुता का दावा करती है। जैसा कि समकालीन वैचारिक चेतना उद्घोष करती हैः

"अब याचना नहीं, रण होगा अपितु जीवन–जय या कि मरण होगा। हम व्यवस्था के हाशिए पर पड़े मूक दर्शक नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के वास्तविक दावेदार हैं।"

स्त्री–विमर्श और लैंगिक चेतना का तुलनात्मक प्रतिमान

तुलनात्मक आयाम	'सूत्रधार' (20वीं सदी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य)	'पूरबी बयार' (21वीं सदी का समकालीन परिप्रेक्ष्य)
स्त्री की सामाजिक स्थिति	**मूक एवं अदृश्य स्त्री (अदृश्यता):** समाज की मुख्यधारा, सार्वजनिक मंच और नागरिक विमर्श से पूरी तरह बहिष्कृत।	**सशक्त एवं दृश्यमान स्त्री (दृश्यता):** नागरिक समाज, राजनैतिक विमर्श और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सक्रिय व स्वतंत्र उपस्थिति।
शोषण का चरित्र	**दोहरा सामंती शोषण:** एक तरफ चरम आर्थिक विपन्नता व पति का दीर्घकालिक प्रवासन (विरह), तो दूसरी तरफ सामंती पुरुषों की कामुक लोलुपता।	**संक्रमणकालीन द्वंद्व:** आधुनिक औद्योगिक बाज़ार व्यवस्था के नए छद्म रूपों, उपभोक्तावाद और पारंपरिक पितृसत्ता के बीच अस्मिता की रक्षा की लड़ाई।
सांस्कृतिक बंदिशें	**मंच पर निषेध (लौंडा नाच):** पितृसत्तात्मक जकड़न के कारण वास्तविक स्त्रियों को मंच पर आने की सख्त मनाही अपितु पुरुषों द्वारा स्त्री वेश धारण करना।	**सांस्कृतिक अधिकार:** कला, रंगमंच, लोक-साहित्य, अकादमिक विमर्श और डिजिटल माध्यमों पर स्त्रियों का स्वयं का एकाधिकार और मुखर अभिव्यक्ति।
प्रतिरोध का माध्यम	**मूक विरह और लोक-गीत:** बंद कमरों या खेतों में काम करते हुए गाए जाने वाले 'गवणाई' व विरह-गीतों के माध्यम से अवसाद की मूक अभिव्यक्ति।	**वैचारिक व कानूनी संघर्ष:** शिक्षा का तीव्र प्रसार, पंचायती राज व्यवस्था में प्रत्यक्ष राजनैतिक भागीदारी, और कानूनी अधिकारों के प्रति पूर्ण सजगता।
अस्मिता और पहचान	**आश्रित अस्मिता:** पुरुष (पति या पिता) के प्रवासन, उनकी इच्छा और उनकी सामाजिक उपस्थिति से तय होने वाला एक पराश्रित अस्तित्व।	**स्वतंत्र अस्मिता:** आर्थिक आत्मनिर्भरता (रोजगार), महिला स्वावलंबन समूहों के माध्यम से वित्तीय सुदृढ़ता और स्वयं के निर्णयों से स्वतंत्र पहचान।

- **'सूत्रधार' की मूक और अदृश्य स्त्री**

संजीव के औपन्यासिक फलक पर ग्रामीण समाज के "महिलाओं के क्षेत्र" का जो ऐतिहासिक चित्रण हुआ है, उसकी सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वे सामाजिक विमर्श के मुख्य पटल पर आते–आते फिर से 'अदृश्य' हो जाती हैं। संजीव ने इस समाजशास्त्रीय सत्य को प्रामाणिकता से सिद्ध किया है कि भिखारी ठाकुर के नाटकों में सुंदरी या मछरिया जैसे सभी स्त्री पात्रों की भूमिकाएँ भी वास्तव में पुरुषों द्वारा स्त्री वेश धारण करके (जिसे लोक–परंपरा में 'लौंडा नाच' कहा जाता है) निभाई जाती थीं। भिखारी के दल में लहटू और दुखी जैसे कुशल पुरुष कलाकार थे, जो मंच पर स्त्री की वेशभूषा में अभिनय करते थे।

यह तथ्य इस बात का सबसे बड़ा और अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाण है कि तत्कालीन सामंती और पितृसत्तात्मक समाज अपनी कुलवधुओं और बेटियों को घर की चारदीवारी से बाहर निकलने, सार्वजनिक संवाद का हिस्सा बनने या अपनी कलात्मक प्रतिभा को व्यक्त करने की तनिक भी अनुमति नहीं देता था। उस कालखंड की स्त्री केवल बहुस्तरीय संताप सहने के लिए अभिशप्त थीकृया तो वह रोज़गार के लिए कलकत्ता गए अपने पति महेंदर के वियोग में गाँव में अकेली घुटती थी, या निर्धनता के कारण बेमेल विवाह की वेदी पर चढ़ा दी जाती थी, या फिर सामंती लोलुपता का शिकार बनती थी। उसकी संपूर्ण प्रतिरोध–शक्ति केवल बंद दरवाज़ों के पीछे लोक–धुनों में बिछड़ने के गीत गाने तक सीमित थी। अपनी इस मूक पीड़ा और लाचारी को बयां करता हुआ उपन्यास का यह उद्धरण पितृसत्तात्मक समाज की क्रूरता को स्पष्ट करता हैः

"गोड़वा पिराइल बलमुआ रहिया निहारत... हमार जवानी ई चूल्हा–चौका के धुआँ में जरि के राख भइल, पर परदेसवा से कवनो संदेस ना आइल।"

इसी तरह, 'गंगा स्नान' नाटक की पात्र मछरिया जब वृद्ध पति के साथ बेमेल विवाह के चक्रव्यूह में फँसती है, तो वह सामंती समाज में स्त्री के केवल एक उपभोग की वस्तु होने की त्रासदी को ही रेखांकित करती है।

- **'पूरबी बयार' की मुखर और आत्मनिर्भर स्त्री**

इसके ठीक विपरीत, आधुनिक 'पूरबी बयार' की समकालीन महिलाएँ इस पारंपरिक घूंघट, पर्दाप्रथा और रूढ़ियों के तमाम बंधनों को छिन्न–भिन्न कर मुख्य सामाजिक प्रकाश में आने के लिए दृढ़ता से निकल पड़ी हैं। समकालीन आंचलिक साहित्य में स्त्री अब केवल पुरुषों के परदेस चले जाने पर कोने में बैठकर आँसू बहाने वाली असहाय 'विरहणी' मात्र नहीं है अपितु वह अब ग्रामीण परिदृश्य के संतुलन के ठीक उस केंद्र पर आसीन है जिसके इर्द–गिर्द परिवार, आधुनिक कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संपूर्ण चक्र घूमता है।

शिक्षा के व्यापक प्रसार और अधिकारों के प्रति जाग्रत हुई यह नई लहर महिलाओं को उनके शरीर, उनकी स्वतंत्र नागरिक पहचान और एक संप्रभु व्यक्ति के रूप में उनके अधिकारों के प्रति पूरी तरह सचेत कर चुकी है। समकालीन कहानियों की मुख्य नायिका लखपति जैसी स्त्रियाँ अब न तो घरेलू और सामंती हिंसा को मूक रहकर सहती हैं, और न ही भाग्यवादी बनती हैं अपितु वे अपने अधिकारों के लिए पुलिस और अदालतों के दरवाज़ों पर सीधे दस्तक देती हैं। ग्रामीण अंचलों में सक्रिय महिला स्वावलंबन समूहों के माध्यम से वे लघु उद्योगों और वित्तीय प्रबंधन से जुड़कर स्वयं को आर्थिक रूप से पूरी तरह स्वतंत्र बना रही हैं। यह आधुनिक दृष्टिकोण वर्तमान महिला को एक पराश्रित वस्तु के बजाय एक 'आत्म–जागरूक, नीति–निर्माता और स्वतंत्र नागरिक' के रूप में स्थापित करता है, जो पुरुष–प्रधान वर्चस्व के समानांतर समाज में अपनी गरिमापूर्ण और स्वतंत्र पहचान की घोषणा करती है।

अकादमिक समाहार और निष्कर्ष

अकादमिक, समाजशास्त्रीय और साहित्यिक दृष्टिकोण से समग्र मूल्यांकन करने पर यह सर्वथा स्पष्ट होता है कि संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार' और समकालीन आंचलिक साहित्य–धारा 'पूरबी बयार' का संपूर्ण

साहित्यिक विमर्श वास्तव में समाज के हाशिए पर खड़े अंतिम व्यक्तिकृवंचित समाजकृकी सामूहिक, ऐतिहासिक और सशक्त आवाज़ है।

जहाँ संजीव का 'सूत्रधार' इतिहास, लोक–साहित्य, लोक–स्मृतियों और जीवनीपरक विधा के कलात्मक सम्मिश्रण के माध्यम से समाज की जड़ों में सदियों से जमे सामंतवाद, जातिगत छुआछूत, औपनिवेशिक शोषण और लैंगिक विसंगतियों को पूरी तरह बेनकाब करता है अपितु वहीं 'पूरबी बयार' वर्तमान समय के संक्रमणकालीन ग्रामीण समाज में आ रहे तीव्र वैचारिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक बदलावों की एक प्रामाणिक एवं अकाट्य गवाही पेश करती है।

'सूत्रधार' और 'पूरबी बयार' हिंदी साहित्य की दो ऐसी वैचारिक धाराएँ हैं जो आपस में ऐतिहासिक रूप से जुड़ी होने के बावजूद अपनी विकास–यात्रा में बिल्कुल भिन्न और उन्नत आयाम प्रस्तुत करती हैं। संजीव का 'सूत्रधार' जहाँ इतिहास की कोख से लोक–कला और शोषितों के संघर्ष के उस 'सूत्र' को खोजकर लाता है जिसने सामंतवाद की चूलें हिलाने की शुरुआत की थी अपितु वहीं 'पूरबी बयार' उस शुरुआत की तार्किक, लोकतांत्रिक और मुखर परिणति है। 'सूत्रधार' यदि वैचारिक ज़मीन तैयार करने का कार्य करता है, तो 'पूरबी बयार' उस ज़मीन पर उगी हुई उस नई फसल की तरह है जो तेज़ हवाओं और विपरीत परिस्थितियों के बीच भी अपने संवैधानिक अधिकारों के साथ सीधे खड़े होने का हौसला रखती है।

दोनों ही साहित्यों का यह तुलनात्मक निष्कर्ष यह सिद्ध करता है कि पूर्वी भारत का ग्रामीण समाज अब केवल एक 'भौगोलिक अंचल' नहीं रह गया है, बल्कि वह चेतना, प्रतिरोध और सामाजिक न्याय की एक जीवंत तथा प्रगतिशील प्रयोगशाला बन चुका है। हिंदी कथा–साहित्य में इन दोनों आयामों का अध्ययन भारतीय समाज के वास्तविक लोकतांत्रिक रूपांतरण को समझने के लिए एक अनिवार्य कुंजी है। ये दोनों ही आयाम हिंदी आलोचना और कथा–साहित्य में केवल आंचलिक विशिष्टता के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि ये समाज के लोकतांत्रिक ढांचे को सुदृढ़ करने, जन–चेतना को आंदोलित करने और सामाजिक न्याय व समतामूलक समाज की स्थापना के सबसे सशक्त, गत्यात्मक और अविस्मरणीय संवाहक बनकर उभरते हैं। संक्षेप में, इन साहित्यों का अध्ययन हमें यह विश्वास दिलाता है कि जब तक समाज में असमानता है, तब तक साहित्य का यह 'सूत्रधार' अपनी 'पूरबी बयार' के माध्यम से न्याय की माँग करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओझा, प्रियंवदा. (2025). "समकालीन आंचलिक साहित्य में स्त्री–विमर्शः विरहणी से आत्मनिर्भर नागरिक बनने का संक्रमणकालीन द्वंद्व". स्त्रीकाल वैचारिक विमर्श, ऑनलाइन संस्करण।
2. कुमार, मिथिलेश. (2021). "भोजपुरी आंचलिकता, वर्ग–संघर्ष और संजीव का कथा–साहित्य". समालोचन अकादमिक विमर्श, ऑनलाइन एडिशन।
3. कुमार, मिथिलेश. (2021). "भोजपुरी आंचलिकता, वर्ग–संघर्ष और संजीव का कथा–साहित्य". समालोचन अकादमिक विमर्श, ऑनलाइन एडिशन।
4. चौधरी, समरेंद्र. (2023). "भिखारी ठाकुर कृत 'बेटी–बेचवा' और 'गबरघिचोर' में सामंती कामलिप्सा और मूक प्रतिरोध". आलोचना दृष्टि, ऑनलाइन संस्करण।
5. ठाकुर, भिखारी. (2002). भिखारी ठाकुर रचनावली (संपा. कूटस्थ). पटनाः भोजपुरी अकादमी।
6. तिवारी, अखिलेश. (2024). "बाबा साहेब आंबेडकर की वैचारिक चेतना और पूरबी बयार का राजनैतिक संघर्ष". जनविकल्प जनवादी विमर्श, ऑनलाइन एडिशन
7. द्विवेदी, अखिलेश. (2020). "लोकनाट्य परंपरा और सांस्कृतिक प्रतिरोधः 'लौंडा नाच' से समकालीन स्त्री–विमर्श तक". साहित्य सेतु (UGC&CARE Listed), 8(2), 112–121।
8. पांडेय, मैनेजर. (2009). लोक–संस्कृति और समकालीन विमर्श. दिल्लीः वाणी प्रकाशन।

9. पांडेय, मैनेजर. (2009). लोक–संस्कृति और समकालीन विमर्श. दिल्लीः वाणी प्रकाशन।

10. यादव, धीरेंद्र. (2023). "सूत्रधार से पूरबी बयार तकः पूर्वी भारत में प्रवासन, विस्थापन और बदलते आंचलिक सरोकार". कथा–देश वैचारिक संकलन, ऑनलाइन संस्करण।

11. राणा, बी. एस. (2019). संजीव के उपन्यास और हाशिए का समाज. कानपुरः चिंतन प्रकाशन।

12. राही, जयप्रकाश. (2014). आंचलिक उपन्यासः सिद्धांत और स्वरूप. दिल्लीः अमन प्रकाशन।

13. शर्मा, अंजनी कुमार. (2023). "समकालीन आंचलिक कहानियों में बदलती 'पूरबी बयार': एक समाजशास्त्रीय अध्ययन". हिंदी अनुशीलन (न्ळब्–ब्।त्म् स्पेज), 71(1), 89–98।

14. शर्मा, अनिरुद्ध. (2024). "लौंडा नाच का समाजशास्त्रः सामंती जकड़न, लैंगिक अदृश्यता और लोक–मंच का यथार्थ". साहित्य कुंज अकादमिक विमर्श, ऑनलाइन एडिशन।

15. शाही, सदानंद. (2012). भिखारी ठाकुरः लोक संस्कृति और समाज. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।

16. संजीव. (2004). सूत्रधार. नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन।

17. सिंघल, विकास. (2018). "समकालीन हिंदी उपन्यासों में विस्थापन और पलायन का संकटः 'सूत्रधार' के विशेष संदर्भ में". भारतीय आधुनिक विमर्श जर्नल, 12(3), 45–52।

18. सिंह, नवल किशोर. (2015). भोजपुरी अंचल का समाजशास्त्र और पलायन का संकट. वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशन।

19. सिंह, रमाकांत. (2022). "भिखारी ठाकुर के नाटकः लोक–प्रतिरोध की कलात्मक अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना". प्रतिश्रुति साहित्यिक विमर्श, ऑनलाइन एडिशन।

❑❑❑